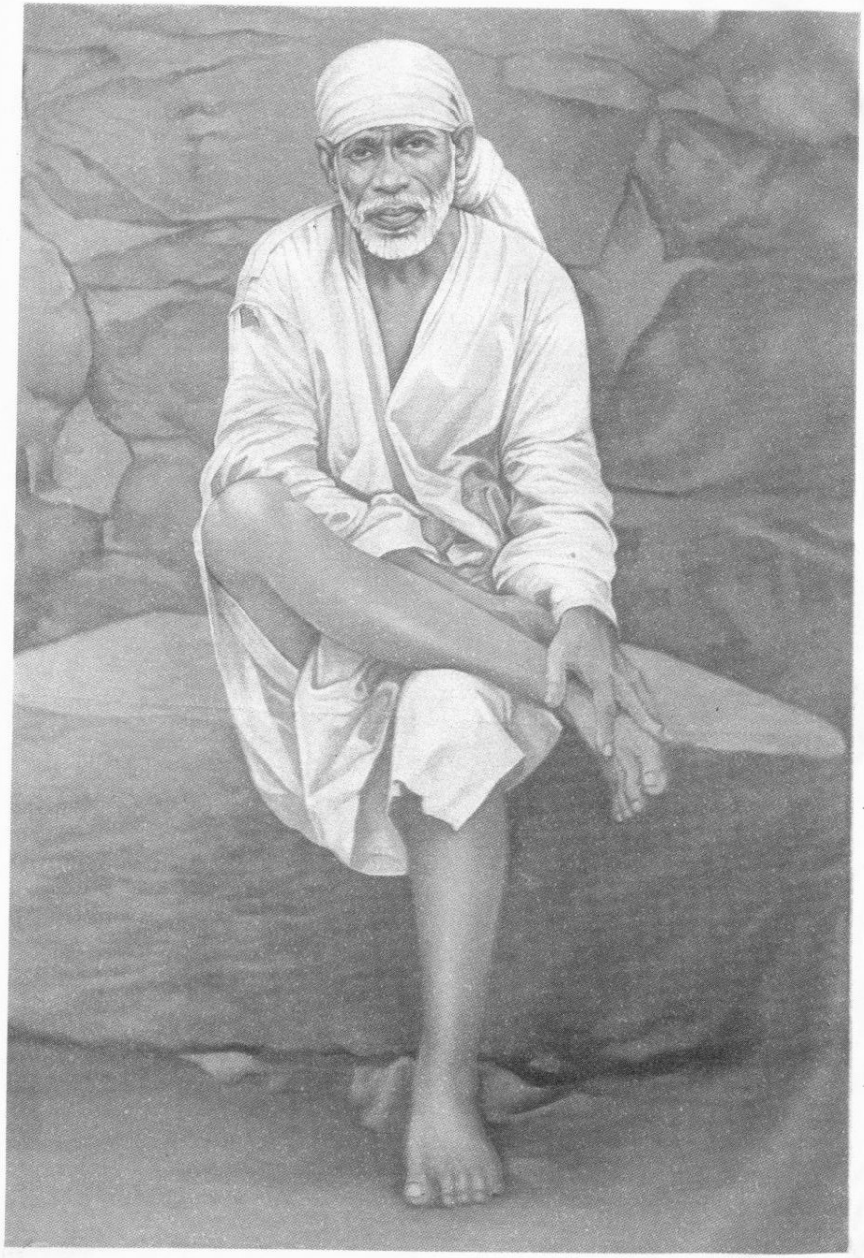

श्री साई सच्चरित्र

(हिन्दी)

(श्री साईं बाबा की अद्भुत जीवनी तथा उनके अमूल्य उपदेश)

मूल ग्रन्थ (मराठी भाषा) के रचयिता

कै. श्री गोविन्दराव रघुनाथ दाभोलकर (हेमाडपन्त)

हिन्दी अनुवादक

श्री शिवराम ठाकुर

विशेष सहाय्य

प्रो. आद्याप्रसाद त्रिपाठी

श्री साईं बाबा संस्थान, शिरडी

सन् १९९९

(३७) चावड़ी समारोह। २२५

(३८) बाबा की हंडी, नानासाहेब द्वारा देव-मूर्ति की उपेक्षा, नैवेद्य वितरण, छाँछ (मट्ठा) का प्रसाद : हेमाडपंत। २३०

(३९) बाबा का संस्कृत ज्ञान : गीता के एक श्लोक की बाबा के द्वारा टीका, समाधि-मन्दिर का निर्माण। २३६

(४०) श्री साई बाबा की कथायें : (१) बी.व्ही. देव की माता के उद्यापन समारोह में सम्मिलित होना, (२) हेमाडपन्त के सहभोज में चित्र के रूप में प्रगट होना। २४४

(४१) चित्र की कथा, चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी के पठन की कथा। २४९

(४२) महासमाधि की ओर (१) भविष्य की आगाही, रामचन्द्र दादा पाटील और तात्या कोते पाटील की मृत्यु टालना, लक्ष्मीबाई शिन्दे को दान, समस्त प्राणियों में बाबा का निवास। २५४

(४३-४४) महासमाधि की ओर : (२) पूर्व तैयारी-समाधि मंदिर, इंट का खण्डन, ७२ घण्टे की समाधि, बापूसाहेब जोग का संन्यास, बाबा के अमृत तुल्य वचन। २६०

(४५) सन्देह-निवारण : काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के विश्राम के लिये शैया : लकड़ी का तख्ता। २६८

(४६) बाबा की गया यात्रा, बकरों की पूर्व जन्म की कथा। २७४

(४७) पुनर्जन्म : सर्प और मेढक की वार्ता। २७८

(४८) भक्तों के संकट-निवारण : सद्गुरु के लक्षण, (१) शेवड़े और (२) सपटणेकर तथा (३) श्रीमती सपटणेकर की कथायें : संतति-दान। २८४

(४९) परीक्षा : (१) हरि कानोबा, (२) सोमदेव स्वामी, (३) नानासाहेब चान्दोरकर की कथायें। २९०

(५०) (१) काकासाहेब दीक्षित, (२) टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथायें। २९५

(५१) उपसंहार : सद्गुरु साई की महानता, प्रार्थना, फलश्रुति और प्रसाद-याचना। ३०१

॥ ओ३म् श्री साई यश : काय शिरडीवासिने नम : ॥ ३०४

श्री साई सच्चरित्र

अध्याय - १

गेहूँ पीसने वाला एक अद्भुत सन्त वन्दना-गेहूँ पीसने की कथा तथा उसका तात्पर्य।

वन्दना (भावार्थ)

पुरातन पद्धति के अनुसार श्री हेमाडपंत श्री साई सच्चरित्र का आरम्भ वन्दना द्वारा करते हैं।

(१) प्रथम श्री गणेश को साष्टांग नमन करते हैं, जो कार्य को निर्विघ्न समाप्त कर उस को यशस्वी बनाते हैं और कहते हैं कि श्री साई ही गणपति हैं।

(२) फिर भगवती सरस्वती को, जिन्होंने काव्य रचने की प्रेरणा दी और कहते हैं कि श्री साई भगवती से भिन्न नहीं हैं, जो कि स्वयं ही अपना जीवन संगीत बयान कर रहे हैं।

(३) फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश को, जो क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और संहारकर्त्ता हैं और कहते हैं कि श्री साई और वे अभिन्न हैं। वे स्वयं ही गुरु बनकर भवसागर से पार उतार देंगे।

(४) फिर अपने कुलदेवता श्रीनारायण आदिनाथ की वन्दना करते हैं, जो कि कोकण में प्रगट हुए। कोकण वह भूमि है, जिसे श्री परशुरामजी ने समुद्र से निकालकर स्थापित किया था। तत्पश्चात् वे अपने कुल के आदिपुरुषों को नमन करते हैं।

(५) फिर श्री भारद्वाज मुनि को, जिनके गोत्र में उनका जन्म हुआ। पश्चात् उन ऋषियों को जैसे-याज्ञवल्क्य, भृगु, पाराशर, नारद, वेदव्यास, सनक-सनंदन, सनत्कुमार, शुक, शौनक, विश्वामित्र, वसिष्ठ, वाल्मीकि, वामदेव, जैमिनी, वैशंपायन,

नव योगींद्र, इत्यादि तथा आधुनिक सन्त जैसे - निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई, जनार्दन, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, कान्हा, नरहरि आदि को नमन करते हैं।

(६) फिर अपने पितामह सदाशिव, पिता रघुनाथ और माता को, जो उनके बचपन में ही गत हो गई थीं। फिर अपनी चाची को, जिन्होंने उनका भरण-पोषण किया और अपने प्रिय ज्येष्ठ भ्राता को नमन करते हैं।

(७) फिर पाठकों को नमन करते हैं, जिनसे उनकी प्रार्थना है कि वे एकाग्रचित्त होकर कथामृत का पान करें।

(८) अन्त में श्रीसच्चिदानंद सद्गुरु श्री साईनाथ महाराज को, जो कि श्री दत्तात्रेय के अवतार और उनके आश्रयदाता हैं और जो "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का बोध कराकर समस्त प्राणियों में एक ही ब्रह्म की व्याप्ति की अनुभूति कराते हैं।

श्री पाराशर, व्यास और शांडिल्य आदि के समान भक्ति के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कर अब ग्रंथकार महोदय निम्नलिखित कथा प्रारम्भ करते हैं।

गेहूँ पीसने की कथा

"सन् १९१० में मैं एक दिन प्रातःकाल श्री साई बाबा के दर्शनार्थ मसजिद में गया। वहाँ का विचित्र दृश्य देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि साई बाबा मुँह हाथ धोने के पश्चात् चक्की पीसने की तैयारी करने लगे। उन्होंने फर्श पर एक टाट का टुकड़ा बिछा, उस पर हाथ से पीसने वाली चक्की रखी। वे कुछ गेहूँ सूप में निकाल लाये और अपनी कफनी की बाँहें चढ़ा, मुट्ठी से चक्की में गेहूँ डालकर उन्हें पीसना आरम्भ कर दिया।

मैं सोचने लगा कि बाबा को चक्की पीसने से क्या लाभ है? उनके पास तो कोई है भी नहीं और वे अपना निर्वाह भी भिक्षावृत्ति द्वारा ही करते हैं। इस घटना के समय वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों की भी ऐसी ही धारणा थी। परंतु उनसे पूछने का साहस किसे था? बाबा के चक्की पीसने का समाचार शीघ्र ही सारे गाँव में फैल गया और उनकी यह विचित्र लीला देखने के हेतु तत्काल ही नर-नारियों की भीड़ मसजिद की ओर दौड़ पड़ी।

उनमें से चार निडर स्त्रियाँ भीड़ को चीरती हुई ऊपर आईं और बाबा को बलपूर्वक वहाँ से हटाकर उनके हाथ से चक्की का खूँटा छीनकर तथा उनकी लीलाओं का गायन करते हुये उन्होंने गेहूँ पीसना प्रारम्भ कर दिया।

पहिले तो बाबा क्रोधित हुए, परन्तु फिर उनका भक्तिभाव देखकर वे शान्त होकर मुस्कराने लगे। पीसते-पीसते उन स्त्रियों के मन में ऐसा विचार आया कि बाबा के न तो घरद्वार है और न इनके कोई बाल-बच्चे हैं तथा न कोई देखरेख करने वाला ही है। वे स्वयं भिक्षावृत्ति द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं, अतः उन्हें भोजनादि के लिये आटे की आवश्यकता ही क्या है? बाबा तो परम दयालु हैं। हो सकता है कि यह आटा वे हम सब लोगों में ही वितरण कर दें। इन्हीं विचारों में मग्न रहकर गीत गाते-गाते ही उन्होंने सारा आटा पीस डाला। तब उन्होंने चक्की को हटाकर आटे को चार समान भागों में विभक्त कर लिया और अपना-अपना भाग लेकर वहाँ से जाने को उद्यत हुईं। अभी तक शान्त मुद्रा में निमग्न बाबा तत्क्षण ही क्रोधित हो उठे और उन्हें अपशब्द कहने लगे - "स्त्रियो! क्या तुम पागल हो गई हो? तुम किसके बाप का माल हड़पकर ले जा रही हो? क्या कोई कर्जदार का माल है, जो इतनी आसानी से उठाकर लिये जा रही हो? अच्छा, अब एक कार्य करो कि इस आटे को ले जाकर गाँव की मेंड़ (सीमा) पर बिखेर आओ।"

मैंने शिरडीवासियों से प्रश्न किया कि जो कुछ बाबाने अभी किया है, उसका यथार्थ में क्या तात्पर्य है? उन्होंने मुझे बतलाया कि गाँव में विषूचिका (हैजा) का जोरों से प्रकोप है और उसके निवारणार्थ ही बाबा का यह उपचार है। अभी जो कुछ आपने पीसते देखा था, वह गेहूँ नहीं, वरन् विषूचिका (हैजा) थी, जो पीसकर नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई है। इस घटना के पश्चात् सचमुच विषूचिका की संक्रामकता शांत हो गई और ग्रामवासी सुखी हो गये।

यह जानकर मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। मेरा कौतूहल जागृत हो गया। मैं स्वयं से प्रश्न करने लगा कि आटे और विषूचिका (हैजा) रोग का भौतिक तथा पारस्परिक क्या सम्बंध है? इसका सूत्र कैसे ज्ञात हो? घटना बुद्धिगम्य सी प्रतीत नहीं होती। अपने हृदय की सन्तुष्टि के हेतु इस मधुर लीला का मुझे चार शब्दों में महत्व अवश्य प्रकट करना चाहिये। लीला पर चिन्तन करते हुये मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा और इस प्रकार बाबा का जीवन-चरित्र लिखने के लिये मुझे प्रेरणा मिली। यह तो सब लोगों को विदित

ही है कि यह कार्य बाबा की कृपा और शुभ आशीर्वाद से सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।"

आटा पीसने का तात्पर्य

शिरडीवासियों ने इस आटा पीसने की घटना का जो अर्थ लगाया, वह तो प्रायः ठीक ही है; परन्तु उसके अतिरिक्त मेरे विचार से कोई अन्य भी अर्थ है। बाबा शिरडी में ६० वर्षों तक रहे और इस दीर्घ काल में उन्होंने आटा पीसने का कार्य प्रायः प्रतिदिन ही किया। पीसने का अभिप्राय गेहूँ से नहीं, वरन् अपने भक्तों के पापों, दुर्भाग्यों, मानसिक तथा शारीरिक तापों से था। उनकी चक्की के दो पाटों में ऊपर का पाट भक्ति तथा नीचे का कर्म था। चक्की का मुठिया जिससे कि वे पीसते थे, वह था ज्ञान। बाबा का दृढ़ विश्वास था कि जब तक मनुष्य के हृदय से प्रवृत्तियाँ, आसक्ति, घृणा तथा अहंकार नष्ट नहीं हो जाते, जिनका नष्ट होना अत्यन्त दुष्कर है; तब तक ज्ञान तथा आत्मानुभूति संभव नहीं है।

यह घटना कबीरदास जी की इसके तदनुरूप घटना की स्मृति दिलाती है। कबीरदास जी एक स्त्री को अनाज पीसते देखकर अपने गुरु निपतिनिरंजन से कहने लगे कि मैं इसलिये रुदन कर रहा हूँ कि जिस प्रकार अनाज चक्की में पीसा जाता है, उसी प्रकार मैं भी भवसागर रूपी चक्की में पीसे जाने की यातना का अनुभव कर रहा हूँ।[१] उनके गुरु ने उत्तर दिया कि घबड़ाओ नहीं, **चक्की के केन्द्र में जो ज्ञान रूपी दंड है, उसी को दृढ़ता से पकड़ लो, जिस प्रकार तुम मुझे करते देख रहे हो। उससे दूर मत जाओ; बस, केन्द्र की ओर ही अग्रसर होते जाओ और तब यह निश्चित है कि तुम इस भवसागर रूपी चक्की से अवश्य ही बच जाओगे।**

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

१. चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।
दो पाटों के बीच में, साबत बचा न कोय॥ - कबीर

अध्याय - २

ग्रन्थ लेखन का ध्येय, कार्यारम्भ में असमर्थता और साहस, गरमागरम बहस, अर्थपूर्ण उपाधि हेमाडपन्त, गुरु की आवश्यकता।

गत अध्याय में ग्रन्थकार ने अपने मौलिक ग्रन्थ श्री साई सच्चरित्र (मराठी भाषा) में उन कारणों पर प्रकाश डाला था, जिनके द्वारा उन्हें ग्रन्थरचना के कार्य को आरम्भ करने की प्रेरणा मिली। अब वे ग्रन्थ पठन के योग्य अधिकारियों तथा अन्य विषयों का इस अध्याय में विवेचन करते हैं।

ग्रंथ लेखन का हेतु

किस प्रकार विषूचिका (हैजा) के रोग के प्रकोप को आटा पिसवाकर तथा उसको ग्राम के बाहर फेंककर रोका तथा उसका उन्मूलन किया, बाबा की इस लीला का प्रथम अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। मैंने और भी लीलाएँ सुनीं, जिनसे मेरे हृदय को अति आनंद हुआ और यही आनन्द का स्रोत काव्य (कविता) रूप में प्रकट हुआ। मैंने यह भी सोचा कि इन महान् आश्चर्ययुक्त लीलाओं का वर्णन बाबा के भक्तों के लिये मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद सिद्ध होगा तथा उनके पाप समूल नष्ट हो जायेंगे। इसलिये मैंने बाबा की पवित्र जीवन गाथा और मधुर उपदेशों का लेखन प्रारम्भ कर दिया। श्री साई की जीवनी न तो उलझनपूर्ण और न संकीर्ण ही है, वरन् सत्य और आध्यात्मिक मार्ग का वास्तविक दिग्दर्शन कराती है।

कार्य आरम्भ करने में असमर्थता और साहस

श्री. हेमाडपन्त को यह विचार आया कि मैं इस कार्य के लिये उपयुक्त पात्र नहीं हूँ। मैं तो अपने परम मित्र की जीवनी से भी भली भाँति परिचित नहीं हूँ और न ही अपनी प्रकृति से। तब फिर मुझ सरीखा मूढ़मति भला एक महान् संतपुरुष की जीवनी लिखने

का दुस्साहस कैसे कर सकता है? अवतारों की प्रकृति के वर्णन में वेद भी अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं। किसी सन्त का चरित्र समझने के लिये स्वयं को पहले सन्त होना नितांत आवश्यक है। फिर मैं तो उनका गुणगान करने के सर्वथा अयोग्य ही हूँ। संत की जीवनी लिखना एक महान् कठिन कार्य है, जिसकी तुलना में सातों समुद्र की गहराई नापना और आकाश को वस्त्र से ढकना भी सहज है। यह मुझे भली भाँति ज्ञात था कि इस कार्य का आरम्भ करने के लिये महान् साहस की आवश्यकता है और कहीं ऐसा न हो कि चार लोगों के समक्ष हास्य का पात्र बनना पड़े, इसलिये श्री साई बाबा की कृपा प्राप्त करने के लिये मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

महाराष्ट्र के संतश्रेष्ठ श्री ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है कि संतचरित्र के रचयिता से परमात्मा अति प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि- "साधुचरित शुभ सरिस कपासू। निरस विषद गुणमय फल जासू॥ जो सहि दुःख पर छिद्र दुरावा। वंदनीय जेहि जग जस पावा॥" भक्तों को भी संतों की सेवा करने की इच्छा बनी रहती है।संतों की कार्य पूर्ण करा लेने की प्रणाली भी विचित्र ही है। यथार्थ प्रेरणा तो संत ही किया करते हैं, भक्त तो निमित्त मात्र, या कहिये कि कार्यपूर्त्ति के लिये एक यंत्र मात्र हैं। उदाहरणार्थ शक सं. १७०० में कवि महीपति को संत चरित्र लेखन की प्रेरणा हुई। सन्तों ने अंतःप्रेरणा की और कार्य पूर्ण हो गया। इसी प्रकार शक सं. १८०० में श्री दासगणू की सेवा स्वीकार हुई। महीपति ने चार काव्य रचे- भक्तविजय, संतविजय, भक्तलीलामृत और संतलीलामृत और दासगणू ने केवल दो-भक्तलीलामृत और संतकथामृत-जिसमें आधुनिक संतों के चरित्रों का वर्णन है। भक्तलीलामृत के अध्याय ३१, ३२ और ३३ तथा संत कथामृत के ५७ वें अध्याय में श्रीसाई बाबा की मधुर जीवनी तथा अमूल्य उपदेशों का वर्णन सुन्दर एवं रोचक ढंग से किया गया है। इनका उद्धरण श्रीसाईलीला पत्रिका के अंक ११, १२ और १७ में दिया गया है। पाठकों से इनके पठन का अनुरोध है। इसी प्रकार श्रीसाईबाबा की अद्‌भुत लीलाओं का वर्णन एक बहुत सुन्दर छोटीसी पुस्तिका- श्रीसाईनाथ भजनमाला में किया गया है। इसकी रचना बान्द्रा की श्रीमती सावित्रीबाई रघुनाथ तेंडुलकर ने की है।

श्रीदासगणू महाराज ने भी श्रीसाईबाबा पर कई मधुर कविताओं की रचना की है। एक और भक्त अमीदास भवानी मेहता ने भी बाबा की कुछ कथाओं को गुजराती में प्रकाशित किया है। 'साई प्रभा' नामक पत्रिका में भी कुछ लीलाएँ शिरडी के दक्षिणा भिक्षा संस्थान द्वारा प्रकाशित की गई हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जब

श्रीसाईनाथ महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाला इतना साहित्य उपलब्ध है, फिर और एक ग्रन्थ 'साई सच्चरित्र' रचने की आवश्यकता ही कहाँ पैदा होती है? इसका उत्तर केवल यही है कि श्रीसाई बाबा की जीवनी सागर के सदृश अगाध, विस्तृत और अथाह है। यदि उसमें गहरे गोता लगाया जाय तो ज्ञान एवं भक्ति रूपी अमूल्य रत्नों की सहज ही प्राप्ति हो सकती है, जिनसे मुमुक्षुओं को बहुत लाभ होगा। श्रीसाई बाबा की जीवनी, उनके दृष्टान्त एवं उपदेश महान् आश्चर्य से परिपूर्ण हैं। दुःख और दुर्भाग्यग्रस्त मानवों को इनसे शान्ति और सुख प्राप्त होगा तथा लोक व परलोक में निःश्रेयस् की प्राप्ति होगी। **यदि श्री साई बाबा के उपदेशों का, जो कि वैदिक शिक्षा के समान ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं, ध्यानपूर्वक श्रवण एवं मनन किया जाये तो भक्तों को अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जायेगी,** अर्थात् ब्रह्म से अभिन्नता, अष्टांग योग की सिद्धि और समाधि आनन्द आदि की प्राप्ति सरलता से हो जायगी। यह सोचकर ही मैंने चरित्र की कथाओं को संकलित करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही यह विचार भी आया कि मेरे लिये सबसे उत्तम साधना भी केवल यही है। जो भोले-भाले प्राणी श्री साई बाबा के दर्शनों से अपने नेत्र सफल करने के सौभाग्य से वंचित रहे हैं, उन्हें यह चरित्र अति आनन्ददायक प्रतीत होगा। अतः मैंने श्रीसाईबाबा के उपदेश और दृष्टान्तों की खोज प्रारम्भ कर दी, जो कि उनकी असीम सहज प्राप्त आत्मानुभूतियोंका निचोड़ था। मुझे बाबा ने प्रेरणा दी और मैंने भी अपना अहंकार उनके श्री-चरणों पर न्योछावर कर दिया। मैंने सोचा कि अब मेरा पथ अति सुगम हो गया है और बाबा मुझे इहलोक और परलोक में सुखी बना देंगे।

मैं स्वयं बाबा की आज्ञा प्राप्त करने का साहस नहीं कर सकता था। अतः मैंने श्री. माधवराव उपनाम शामा से, जो कि बाबा के अंतरंग भक्तों में से थे, इस हेतु प्रार्थना की। उन्होंने इस कार्य के निमित्त श्री साईबाबा से विनम्र शब्दों में इस प्रकार प्रार्थना की कि "ये अण्णासाहेब आपकी जीवनी लिखने के लिये अति उत्सुक हैं। परन्तु आप कृपया ऐसा न कहना कि मैं तो एक फकीर हूँ तथा मेरी जीवनी लिखने की आवश्यकता ही क्या है? आपकी केवल कृपा और अनुमति से ही ये लिख सकेंगे, अथवा आपके श्री-चरणों का पुण्यप्रताप ही इस कार्य को सफल बना देगा। आपकी अनुमति तथा आशीर्वाद के अभाव में कोई भी कार्य यशस्वी नहीं हो सकता।" यह प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई। उन्होंने आश्वासन और उदी देकर अपना वरद-हस्त मेरे मस्तक पर रखा और कहने लगे कि "इन्हें जीवनी और दृष्टान्तों को एकत्रित कर लिपिबद्ध करने दो, मैं इनकी सहायता करूँगा। **मैं स्वयं ही अपनी जीवनी लिखकर भक्तों की**

इच्छा पूर्ण करूँगा। परन्तु इनको अपना अहं त्यागकर मेरी शरण में आना चाहिये। जो अपने जीवन में इस प्रकार आचरण करता है, उसकी मैं अत्यधिक सहायता करता हूँ। मेरी जीवन-कथाओं की बात तो सहज है, मैं तो इन्हें घर बैठे अनेक प्रकार से सहायता पहुँचाता हूँ। जब इनका अहं पूर्णतः नष्ट हो जायेगा और खोजनेपर लेशमात्र भी न मिलेगा, तब **मैं इनके अन्तःकरण में प्रगट होकर स्वयं ही अपनी जीवनी लिखूँगा। मेरे चरित्र और उपदेशों के श्रवण मात्र से ही भक्तों के हृदय में श्रद्धा जागृत होकर सरलतापूर्वक आत्मानुभूति एवं परमानंद की प्राप्ति हो जायेगी।** ग्रन्थ में अपने मत का प्रतिपादन और दूसरों का खंडन तथा अन्य किसी विषय के पक्ष या विपक्ष में व्यर्थ के वादविवाद की कुचेष्टा नहीं होनी चाहिये।''

अर्थपूर्ण उपाधि 'हेमाडपंत'

'वादविवाद' शब्द से हमको स्मरण हो आया कि मैंने पाठकों को वचन दिया है कि 'हेमाडपंत' उपाधि किस प्रकार प्राप्त हुई, इसका वर्णन करूँगा। अब मैं उसका वर्णन करता हूँ।

श्री काकासाहेब दीक्षित व नानासाहेब चाँदोरकर मेरे अति घनिष्ठ मित्रों में से थे। उन्होंने मुझसे शिरडी जाकर श्रीसाई बाबा के दर्शनों का लाभ उठाने का अनुरोध किया। मैंने उन्हें वचन दिया, परन्तु कुछ बाधा आ जाने के कारण मेरी शिरडी-यात्रा स्थगित हो गई। मेरे एक घनिष्ठ मित्र का पुत्र लोनावला में रोगग्रस्त हो गया था। उन्होंने सभी सम्भव आधिभौतिक और आध्यात्मिक उपचार किये, परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल हुए और ज्वर किसी प्रकार भी कम न हुआ। अन्त में उन्होंने अपने गुरुदेव को उसके सिरहाने बिठलाया, परन्तुं परिणाम पूर्ववत् ही हुआ। यह घटना देखकर मुझे विचार आया कि जब गुरु एक बालक के प्राणों की भी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तब उनकी उपयोगिता ही क्या है? और जब उनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं, तब फिर शिरडी जाने से क्या प्रयोजन? ऐसा सोचकर मैंने यात्रा स्थगित कर दी। परन्तु जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा और वह इस प्रकार हुआ। प्रांताधिकारी नानासाहेब चाँदोरकर बसई को दौरेपर जा रहे थे। वे ठाणा से दादर पहुँचे तथा बसई जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय बांद्रा लोकल आ पहुँची, जिसमें बैठकर वे बांद्रा पहुँचे तथा शिरडीयात्रा स्थगित करने के लिये मुझे आड़े हाथों लिया। नानासाहेब का तर्क मुझे उचित तथा सुखदायी प्रतीत हुआ और इसके फलस्वरूप मैंने उसी रात्रि शिरडी जाने का निश्चय किया और सामान बाँधकर शिरडी को प्रस्थान कर दिया। मैंने सीधे दादर जाकर वहाँ से मनमाड

की गाड़ी पकड़ने का कार्यक्रम बनाया। इस निश्चय के अनुसार मैंने दादर जाने वाली गाड़ी के डिब्बे में प्रवेश किया। गाड़ी छूटने ही वाली थी कि इतने में एक यवन मेरे डिब्बे में आया और मेरा सामान देखकर मुझसे मेरा गन्तव्य स्थान पूछने लगा। मैंने अपना कार्यक्रम उसे बतला दिया। उसने मुझसे कहा कि मनमाड की गाड़ी दादर पर खड़ी नहीं होती, इसलिये सीधे बोरीबन्दर से होकर जाओ। यदि यह एक साधारण सी घटना घटित न हुई होती तो मैं अपने कार्यक्रम के अनुसार दूसरे दिन शिरडी न पहुँच सकने के कारण अनेक प्रकार की शंका-कुशंकाओं से घिर जाता। परन्तु ऐसा घटना न था। भाग्य ने साथ दिया और दूसरे दिन ९-१० बजे के पूर्वही मैं शिरडी पहुँच गया। यह सन् १९१० की बात है, जब प्रवासी भक्तों के ठहरने के लिये साठेवाड़ा ही एकमात्र स्थान था। ताँगे से उतरने पर मैं साईबाबा के दर्शनों के लिये बड़ा लालायित था। उसी समय भक्तप्रवर श्री. तात्यासाहेब नूलकर मसजिद से लौटे ही थे। उन्होंने बतलाया कि इस समय श्रीसाईबाबा मसजिद की मोड़पर ही हैं। अभी केवल उनका प्रारम्भिक दर्शन ही कर लो और फिर स्नानादि से निवृत्त होने के पश्चात्, सुविधा से भेंट करने जाना। यह सुनते ही मैं दौड़कर गया और बाबा की चरणवन्दना की। मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। मुझे क्या नहीं मिल गया था? मेरा शरीर उल्लसित सा हो गया। क्षुधा और तृषा की सुधि जाती रही। जिस क्षण से उनके भवविनाशक चरणों का स्पर्श प्राप्त हुआ, मेरे जीवन में एक नूतन आनन्द-प्रवाह बहने लगा। एक नई उमंग आ गई। जिन्होंने मुझे बाबा के दर्शनार्थ प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहायता पहुँचाई, उनके प्रति मेरा हृदय बारम्बार कृतज्ञता अनुभव करने लगा। मैं उनका सदैव के लिये ऋणी हो गया। उनका यह उपकार मैं कभी भूल न सकूँगा। यथार्थ में वे ही मेरे कुटुम्बी हैं और उनके ऋण से मैं कभी भी मुक्त न हो सकूँगा। मैं सदा उनका स्मरण कर उन्हें मानसिक प्रणाम किया करता हूँ। जैसा कि मेरे अनुभव में आया कि साई के दर्शन में ही यह विशेषता है कि विचार परिवर्तन तथा पिछले कर्मों का प्रभाव शीघ्र मंद पड़ने लगता है और शनैः शनैः अनासक्ति और सांसारिक भोगों से वैराग्य बढ़ता जाता है। केवल गत जन्मों के अनेक शुभ संस्कार एकत्रित होनेपर ही ऐसा दर्शन प्राप्त होना सुलभ हो सकता है। पाठको, मैं आपसे शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि आप श्रीसाईबाबा को एक दृष्टि भरकर देख लेंगे तो आपको सम्पूर्ण विश्व ही साईमय दिखलाई पड़ेगा।

गरमागरम बहस

शिरडी पहुँचने के प्रथम दिन ही बालासाहेब तथा मेरे बीच गुरु की आवश्यकता पर वादविवाद छिड़ गया। मेरा मत था कि स्वतंत्रता त्यागकर पराधीन क्यों होना चाहिये तथा

जब कर्म करना ही पड़ता है, तब गुरु की आवश्यकता ही कहाँ रही? प्रत्येक को पूर्ण प्रयत्न कर स्वयं को आगे बढ़ाना चाहिये। गुरु शिष्य के लिये करता ही क्या है? वह तो सुख से निद्रा का आनंद लेता है। इस प्रकार मैंने स्वतंत्रता का पक्ष लिया और बालासाहेब ने प्रारब्ध का। उन्होंने कहा कि जो विधि-लिखित है, वह घटित हो कर रहेगा; इसमें उच्च कोटि के महापुरुष भी असफल हो गये हैं। कहावत है- "मेरे मन कछु और है, धाता के कछु और।" फिर परामर्शयुक्त शब्दों में बोले "भाई साहब,यह निरी विद्वत्ता छोड़ दो। यह अहंकार तुम्हारी कुछ भी सहायता न कर सकेगा।" इस प्रकार दोनों पक्षों के खंडन-मंडन में लगभग एक घंटा व्यतीत हो गया और सदैव की भाँति कोई निष्कर्ष न निकल सका। इसलिये तंग और विवश होकर विवाद स्थगित करना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी मानसिक शांति भंग हो गई तथा मुझे अनुभव हुआ कि जब तक घोर दैहिक बुद्धि और अहंकार न हो, तब तक विवाद संभव नहीं। वस्तुतः यह अहंकार ही विवाद की जड़ है।

जब अन्य लोगों के साथ मैं मसजिद गया, तब बाबा ने काकासाहेब को संबोधित कर प्रश्न किया कि साठेवाड़ा में क्या चल रहा था? किस विषय में विवाद था? फिर मेरी ओर दृष्टिपात कर बोले कि इन 'हेमाडपंत' ने क्या कहा। ये शब्द सुनकर मुझे अधिक अचम्भा हुआ। साठेवाड़ा और मसजिद में पर्याप्त अन्तर था। सर्वज्ञ या अंतर्यामी हुए बिना बाबा को विवाद का ज्ञान कैसे हो सकता था?

मैं सोचने लगा कि बाबा 'हेमाडपंत' के नाम से मुझे क्यों सम्बोधित करते हैं? यह शब्द तो 'हेमाद्रिपंत' का अपभ्रंश है। 'हेमाद्रिपंत' देवगिरि के यादव राजवंशी महाराजा महादेव और रामदेव के विख्यात मंत्री थे। वे उच्च कोटि के विद्वान्, उत्तम प्रकृति और 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' (जिसमें आध्यात्मिक विषयों का विवेचन है) और 'राजप्रशस्ति' जैसे उत्तम काव्यों के रचयिता थे। उन्होंने ही हिसाब-किताब रखने की नवीन प्रणाली का आविष्कार किया था और बही खाते की पद्धति को जन्म दिया था और कहाँ मैं इसके विपरीत एक अज्ञानी, मूर्ख और मंदमति हूँ। अतः मेरी समझ में यह न आ सका कि मुझे इस विशेष उपाधि से विभूषित करने का क्या तात्पर्य है? गहन विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कहीं मेरे अहंकार को चूर्ण करने के लिये ही तो बाबा ने इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया है, ताकि मैं भविष्य में सदैव के लिए निरभिमानी एवं विनम्र हो जाऊँ, अथवा कहीं यह मेरे वाक्चातुर्य के उपलक्ष में मेरी प्रशंसा तो नहीं है?

भविष्य पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि बाबा के द्वारा 'हेमाडपंत' की उपाधि से विभूषित करना कितना अर्थपूर्ण और भविष्यगोचर था। सर्वविदित है कि कालान्तर

में दाभोलकर ने श्रीसाईबाबा संस्थान का प्रबन्ध कितने सुचारु एवं विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था। हिसाब-किताब आदि कितने उत्तम प्रकार से रखे तथा साथ ही साथ महाकाव्य 'साई सच्चरित्र' की रचना भी की। इस ग्रन्थ में महत्त्वपूर्ण और आध्यात्मिक विषयों जैसे ज्ञान, भक्ति वैराग्य, शरणागति व आत्मनिवेदन आदि का समावेश है।

गुरु की आवश्यकता

इस विषय में बाबा ने क्या उद्गार प्रकट किये, इस पर हेमाडपंत द्वारा लिखित कोई लेख या स्मृतिपत्र प्राप्त नहीं है। परंतु काकासाहेब दीक्षित ने इस विषय पर उनके लेख प्रकाशित किये हैं। बाबा से भेंट करने के दूसरे दिन 'हेमाडपंत' और काकासाहेब ने मसजिद में जाकर गृह लौटने की अनुमति माँगी। बाबा ने स्वीकृति दे दी।

किसी ने प्रश्न किया- "बाबा, कहाँ जायें?"

उत्तर मिला- "ऊपर जाओ।"

प्रश्न- "मार्ग कैसा है?"।

बाबा-अनेक पंथ हैं। यहाँ से भी एक मार्ग है। परन्तु यह मार्ग दुर्गम है तथा सिंह और भेड़िये भी मिलते हैं।

काकासाहेब-यदि पथ प्रदर्शक भी साथ हो तो?

बाबा- तब कोई कष्ट न होगा। मार्ग-प्रदर्शक तुम्हारी सिंह, भेड़िये और खन्दकों से रक्षा कर तुम्हें सीधे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। परन्तु उसके अभाव में जंगल में मार्ग भूलने या गड्ढे में गिर जाने की सम्भावना है। दाभोलकर भी उपर्युक्त प्रसंग के अवसर पर वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने सोचा कि जो कुछ बाबा कह रहे हैं, वह "गुरु की आवश्यकता क्यों है?" इस प्रश्न का उत्तर है (साईलीला भाग १, संख्या ५ व पृष्ठ ४७ के अनुसार)। उन्होंने सदा के लिये मन में यह गाँठ बाँध ली कि अब कभी इस विषय पर वादविवाद नहीं करेंगे कि स्वतंत्र या परतंत्र व्यक्ति आध्यात्मिक विषयों के लिये कैसा सिद्ध होगा? प्रत्युत् इसके विपरीत यथार्थ में परमार्थ-लाभ केवल गुरु के उपदेश-पालन में ही निहित है। इन उपदेशों का वर्णन मूल काव्य-ग्रंथ के इसी अध्याय में किया गया है, जिसमें लिखा है कि राम और कृष्ण महान् अवतारी होते हुए भी आत्मानुभूति के लिये राम को अपने गुरु वसिष्ठ और कृष्ण को अपने गुरु सांदीपनि की शरण में जाना पड़ा था। इस मार्ग में उन्नति प्राप्त करने के लिये केवल श्रद्धा और धैर्य- ये ही दो गुण सहायक हैं।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥